

TDC PART II HISTORY (HON) PAPER III

अनिल कुमार
इतिहास विभाग, आर.बी.जी.ओ.ए. कॉलेज
महाराजगंज (सिवा) 03103000000

"7वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी के बीच भारतीय व्यापार उद्योग एवं निगम"

7वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी का काल भारतीय अर्थव्यवस्था का समृद्ध काल था। उद्योग एवं व्यापार, कृषि से प्राप्त अतिशेष के कारण नगरीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला। परिणामतः दक्षिण के बंदरगाह बड़े समृद्ध नगर हो गये। उत्तर भारत की ओर दक्षिण में भी व्यापारी श्रेणियों में सुसंगठित होते गये। आंतरिक व्यापार के साथ-साथ विदेश व्यापार भी काफी फलफूल रहा था। आठवीं शताब्दी के बाद विदेशी व्यापार भी बृद्धि होती गई जो 12वीं शताब्दी में अपने चरम पर थी।

7वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से 10वीं शताब्दी तक दक्षिणी भारत की आर्थिक व्यवस्था में कृषि की प्रधानता बनी हुई थी। राज्य की आय का मुख्य स्रोत कृषि कर था। भूमिदान की प्रथा के कारण नई जमीन की कृषि योग्य बनाने की प्रक्रिया चल पड़ी थी। दक्षिण में ग्रामों की सार्वजनिक संस्थाएँ सिंचाई, भूमि और कृषि संबंधी अनेक प्रबंधों को सुचारु रूप से चलाकर उत्पादन में वृद्धि करती थी। चोल शासकों ने कावेरी नदी पर बांध बनाकर सिंचाई का व्यापक प्रबंध किया था जिससे इस काल में कृषि की विशेष उन्नति के संकेत मिलते हैं।

चेर, चोल, पांड्य, मलय, मगध, कोशल, सुराष्ट्र, खानुवह, कांबोज, लार, पारस, नेपाल आदि अनेक दूर-दूर के स्थानों से हाथी, घोड़ा, बहुमूल्य रत्न, मसाला, दवा, इत्यादि का यह 'श्रेणी' व्यापार करती थी। चोल राज्य के "अंजुवणम" एवं "वीरवर्नंजुम" नामक व्यापारियों की प्रसिद्ध श्रेणियाँ थी। श्रेणियों वस्तुओं के उत्पादन, व्यापार, स्त्रुह व्याज आदि नियमों का निर्धारण भी करती थी। इन श्रेणियों के पास पैदल तथा तलवारधारी सैनिक होते थे। व्यापारिक श्रेणी एवं संघों के लिए ग्रामीण सभाएँ आर्थिक आग्राह प्रदान करती थी। श्रेणी सार्वजनिक ग्रामीण संस्था 'सभा' तथा 'छर' में भूमिदान ~~इसी~~ आदि आर्थिक रुतों के लिए दान जमा करती थी। इस प्रकार ग्राम सभाएँ एक प्रकार का बैंक तथा सार्वजनिक न्यायी (द्रस्टी) का भी कार्य करती थी।

अरब भाषी इन्हीं रोस्तेह के अनुसार राष्ट्रभूत
राज्य में सागौन का पर्याप्त उत्पादन होता था और इसका निर्मात
भी किता ज्ञा था। केरल के पश्चिमी घाट में चंदन की लकड़ी, काली
मिर्च, इलायची, बोंस तथा नाग प्रकार के श्रुगंधित पौधों का उत्पादन
तथा निर्मात होता था। मेघालय के अनुसार दक्षिण बहुभूत रत्नों
के लिए विख्यात था। ईसा पूर्व तट पर पांड्य राज्य मोतियों के
लिए प्रसिद्ध था। सोमरा में तमपा निर्माण होता था। चोलराज्य में
अष्टधातु की मुर्तियाँ बनती थी। पश्चिमी भारत विभिन्न प्रकार की
लकड़ियों बोंस, नाड, रवजुर एवं गुग्गुलु के लिए प्रसिद्ध था। सिंहात
(रत्नागिरि) में रवजुर, नागिरा, पांड्य राज्य में अकरक, इलायची मदुरा
में कपूर तथा चोलराज्य में नील, हाथी-दांत प्रचुर मात्रा में उत्पादन
होता था। चोलराज्य में कपड़ा, तेलगु प्रदेश में सूती वस्त्र एवं
मदुरा-सूती तथा रेडानी कपड़े की खुलाई-रंगाई के लिए प्रसिद्ध था।

इन वस्तुओं का सागुड़ी मार्ग से पश्चिमी
तथा पूर्वी देशों में निर्मात होता था। समुद्री मार्ग से आब व्यापारी
(दक्षिणी भारत के बंदरगाहों के माध्यम से) व्यापार करते थे। दक्षिणपूर्वी
एशियाई देशों से भी दक्षिण भारत का व्यापारिक संबंध था। थात,
सोपारा, श्री कंदपुर, कवीलों पश्चिमी तट के प्रसिद्ध बंदरगाह हैं।
मालवा के तट अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के केन्द्र थे। मावर से
चीन, इराक, खुरासान तथा यूरोप तक व्यापार होता था। पश्चिमी
देशों तथा मध्य एशिया से लोहे, शराब, इम, जाला तथा रुमाणा से
लौंग, जलमासी, मसाला, सोना, चांदी, तंबा, श्री लंका से चीन-चीन
से चीन पट्ट, रेडानी कपड़ा लोहा आदि का भारत में आयात होता था।

दक्षिण भारत के आर्थिक जीवन में
मंदिरों का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण भूमिका थी। न्यायिक सभाओं को
प्रचुर मात्रा में दान मिलने के कारण मंदिर में कर्मचारियों की संख्या में
पर्याप्त वृद्धि हुई। जिन्हें सेवा के बदले अनाज तथा बाद में भूमि दी
जाने लगी जिससे समाज में सामंती प्रवृत्तियों का समावेश हुआ।

दसवीं से बारहवीं शती तक
उत्तर भारत की तुलना में दक्षिण भारत की अर्थव्यवस्था अधिक

सुईल आया। पर केन्द्रित थी क्योंकि चोलों एवं चालुक्यों के शासन काल में दक्षिण की अर्थव्यवस्था को नवीन प्रभुत्व मिला था। चोल शासकों के सामुद्रिक विजयों के कारण विदेश व्यापार को विस्तार के नवीन आयाम प्राप्त हुए।

इस काल के उद्योगों में चालु उद्योग सर्वाधिक विकसित स्थिति में था। विभिन्न चालुओं का काम करने वाले कर्मकार और उद्योग विभिन्न श्रेणियों में विभाजित थे। सोना चांदी के आभूषण, देवताओं की मूर्तियों, देवताओं के लिए छत्र, सिंहासन, मुकुट एवं देवी देवताओं के शोग के लिए स्वर्ण पात्र बनाने में स्वर्णकार बहुत प्रवीण थे। आभूषणों में लहने के लिए रत्नों और मोतियों का भी प्रयोग होता था। इस प्रकार जौहरीयों एवं स्वर्णकारों के उद्योग अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुके थे।

चोल-चालुक्य काल में खेता के विस्तार के साथ हथियारों का निर्माण जैसे धनुष, तीर, तलवार, छुरे एवं अन्य हथियारों का निर्माण काफी विकसित हो चुका था। इसके अतिरिक्त विभिन्न चालुओं को गलाकर मूर्तियों कापने एवं ग्रहपयोगी वर्तनों के निर्माण करने वाले उद्योग भी काफी विकसित स्थिति में थे।

स्त्री कपड़े का उपयोग मुख्यतः कालीकट के पास केन्द्रित था। कोयंबटूर में रेशम के बेल धूँदकार कपड़ों की बुनाई होती थी। कांचीपुरम् भी वस्त्र उद्योग का बहुत बड़ा केन्द्र था। इस समय भारत से निर्यातित वस्तुओं में स्त्री एवं रेशमी कपड़ों का प्रमुख अंश होता था। इस काल में काण्ठ उद्योग भी एक प्रमुख उद्योग था। कालीकट एवं कोचीन जहाजों एवं बड़ी-बड़ी नौकाओं का प्रमुख निर्माण केन्द्र था। समुद्र तट पर समुद्री पानी से नमक लगाने का कार्य राज्यों के हेतुशेख एवं निर्माण में होता था। मैसूर से लेकर झाँपुर तक स्वर्ण, लोहा, ताँबा और गंधक विभिन्न भूगर्भिक शोरो से प्राप्त किए जाते थे। कृषि से संबंधित उद्योगों में नारियल से संबंधित उद्योग सर्वप्रमुख था। नारियल की बनी बस्ती, चटाइयों और पैलों आदि का बड़ी मात्रा में निर्माण होता था। कर्नाटक और आंध्र में मुख्यतः केण्डु से गन्ने का रस निकाल कर शरब बनाया जाता था।